गोरा

अध्याय 8

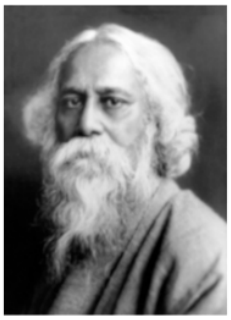

रविंद्रनाथ टैगोर

हिन्दी ADDA

गोरा

अध्याय 8

https://www.hindiadda.com/gora-part-viii/

गुलाब के फूलों का यहाँ थोड़ा-सा इतिहास बता दें।

गोरा तो रात को परेशबाबू के घर चला आया, पर मजिस्ट्रेट के घर अभिनय में भाग लेने की बात के लिए विनय को कष्ट भोगना पड़ा।

ललिता के मन में उस अभिनय के लिए कोई उत्साह रहा हो, ऐसा नहीं था, बल्कि ऐसी बातें उसे बिल्कुल नापंसद थीं। लेकिन विनय को किसी तरह इस अभिनय के लिए पकड़वा पाने की मानो जैसे ज़िद ठान ली थी। जो भी काम गोरा की राय के विरुध्द हो, वही विनय से करवाना वह चाह रही थी। विनय गोरा का अंधभक्त है, यह बात ललिता को क्यों इतनी खल रही थी, यह वह स्वयं भी नहीं समझ पा रही थी, किंतु उसे ऐसा लग रहा था कि जैसे भी हो, सब बंधन काटकर विनय को मुक्त कर लेने से ही वह चैन की साँस ले सकेगी।

ललिता ने चोटी झुलाते हुए सिर हिलाकर कहा, "क्यों महाशय, अभिनय में बुराई क्या है?"

विनय ने कहा, "अभिनय अवगुण चाहे न भी हो किंतु, मजिस्ट्रेट के घर अभिनय करने जाना मेरे मन को ठीक नहीं लगता।"

ललिता, "आप अपने मन की बात कह रहे हैं या और किसी के?"

विनय, " और किसी के मन की बात कहने का दायित्व मुझ पर नहीं है, और यह काम है भी मुश्किल। आप चाहे मत मानिए, मैं हमेशा अपने मन की बात ही कहता हूँ- कभी अपने शब्दों में, कभी शायद और किसी के।"

इस बात का ललिता ने कोई उत्तर नहीं दिया, केवल तनिक-सी मुस्करा दी। लेकिन थोड़ी देर बाद बोली, "जान पड़ता है, आपके दोस्त गोरा बाबू समझते हैं कि मजिस्ट्रेट का निमंत्रण न मानना ही बहुत बड़ी बहादुरी का काम है और इसी प्रकार अंग्रेज़ों से लड़ाई लड़ी जाएगी।"

उत्तेजित होकर विनय ने कहा, "मेरे दोस्त ऐसा शायद न भी समझते हों, लेकिन मैं समझता हूँ। लड़ाई नहीं तो और क्या है? जो आदमी हमें तुच्छ समझता है- समझता है कि कनिष्ठि के इशारे से बुलाए जाने से ही हम कृतार्थ हो जाएँगे, उसकी इस उपेक्षा भावना के साथ उपेक्षा से ही लड़ाई न करें तो आत्म-सम्मान कैसे बचेगा?"

अंत में विनय ने कहा, "देखिए, आप बहस क्यों करती हैं- आप यह क्यों नहीं कहतीं कि 'मेरी इच्छा है कि आप अभिनय में भाग लें' उससे मुझे आपकी बात रखने के लिए अपनी राय का बलिदान करने का सुख तो मिलेगा।"

ललिता ने कहा, "वाह, मैं ऐसा क्यों कहने लगी! सचमुच ही आपकी यदि कोई राय हो तो उसे आप मरे अनुरोध पर क्यों छोड़ देंगे? लेकिन पहले वह सचमुच आपकी राय तो हो।"

विनय ने कहा, "अच्छा, यही सही। मेरी सचमुच कोई राय न सही। आपका अनुरोध भी न सही, आपकी दलील से हारकर ही मैं अभिनय में भाग लेने को राज़ी हो गया- यह ही सही।"

तभी वरदासुंदरी के कमरे में आने पर विनय ने उठकर उनसे कहा, "अभिनय की तैयारी के लिए मुझे क्या करना होगा, बता दीजिएगा।"

गर्व से वरदासुंदरी ने कहा, "उसकी आपको फिक्र नहीं करनी होगी, हम आप को अच्छी तरह तैयार कर देंगी। सिर्फ अभ्यास के लिए आपको रोज़ नियम से आना होगा।"

विनय ने कहा, "अच्छी बात है। तो अब आज चलूँ।"

वरदासुंदरी बोलीं, "अभी कैसे, खाना खाकर जाना।"

विनय ने कहा, "आज रहने दीजिए।"

वरदासुंदरी ने कहा, "नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।"

खाना विनय ने वहीं खाया, लेकिन और दिनों की-सी स्वाभाविक प्रफुल्लता उसमें न थी। सुचरिता भी न जाने कैसी अनमनी होकर चुप थी। जब ललिता से विनय का झगड़ा हो रहा था तब वह बरामदे में टहलती रही थी। रात को बातचीत कुछ जमीं नहीं।

चलते समय ललिता का चेहरा देखकर विनय ने कहा "मैंने हार भी मान ली, तब भी आपको प्रसन्न न कर सका।"

आसानी से ललिता रोती नहीं, किंतु आज न जाने क्या हुआ कि उसकी ऑंखों से ऑंसू फूट पड़ना चाह रहे हैं। न जाने क्यों आज वह विनय बाबू को बार-बार ऐसे कोंच रही है और स्वयं भी कष्ट पा रही है।

विनय जब तक अभिनय में भाग लेने को राज़ी नहीं हो रहा था, तब तक ललिता को उसे मानने की ज़िद चढ़ती जा रही थी। लेकिन विनय के राज़ी होते ही उसका सारा उत्साह मर गया। भाग न लेने के पक्ष में जितने तर्क थे उसके मन में प्रबल हो उठे। तब उसका मन दग्ध होकर कहने लगा- केवल मेरा अनुरोध रखने के लिए विनय बाबू का यूँ राज़ी होना ठीक नहीं हुआ। अनुरोध-क्यों रखेंगे अनुरोध वह समझते हैं, मेरा अनुरोध रखकर उन्होंने मुझ पर एहसान किया है- उनके इतने-से एहसान के लिए ही जैसे मैं मरी जा रही हूँ।

लेकिन अब ऐसे कुढ़ने से क्या फायदा! सचमुच ही उसने विनय को अभिनय में शामिल करने के लिए इतना ज़ोर लगाया था। शिष्टाचार वश विनय ने उसकी यह ज़िद मान ली। इस पर गुस्सा करके भी क्या फायदा? इस बात से ललिता को अपने ऊपर इतनी घृणा और लज्जा होने लगी जो स्वभावतया तो इतनी बात के लिए नहीं होनी चाहिए थी। और दिन मन चंचल होने पर वह सुचरिता के पास जाती थी, आज नहीं गई; क्योंकि वह स्वयं नहीं समझ सकी कि उसका हृदय भेदकर क्यों उसकी ऑंखों से ऑंसू फूटे पड़ रहे थे।

अगले दिन सुबह ही सुधीर ने गुलदस्ता लाकर लावण्य को दिया था। उस गुलदस्ते में एक टहनी पर दो अधाखिले गुलाब थे। उन्हें ललिता ने गुलदस्ते से निकाल लिया। लावण्य ने पूछा "यह क्या कर रही है?"

ललिता ने कहा, "गुलदस्ते के इतने सब घटिया फूल-पत्तों के बीच अच्छे फूल बँधे देखकर मुझे तकलीफ होती है। ऐसे सब चीज़ों को रस्सी से ज़बरदस्ती एक साथ बाँध देना जंगलीपन है।"

ललिता ने यह कहकर सब फूल खोल दिए और उन्हें अलग-अलग करके कमरे में जहाँ-तहाँ सजा दिया! केवल दोनो अधखिले गुलाब उठा ले गई। सतीश ने दौड़ते हुए आकार पूछा, "दीदी, फूल कहाँ से मिले?"

उसकी बात का ललिता ने कोई उत्तर न देकर कहा, "आज अपने दोस्त के घर नहीं जाएगा?"

सतीश तब तक विनय की बात नहीं सोच रहा था, लेकिन अब उसका जिक्र होते ही उछलकर बोला, "जाऊँगा।" कहते-कहते वह फौरन जाने के लिए उतावला हो उठा।

उसे पकड़कर ललिता ने पूछा, "वहाँ जाकर तू क्या करता है?"

सतीश ने संक्षेप में कहा, "बातें करता हूँ।"

ललिता ने पूछा, "वह तुझे इतनी तस्वीरें देते हैं, तू भी उन्हें कुछ क्यों नहीं देता?"

सतीश के लिए विनय अंग्रेज़ी पत्र-पत्रिकाओं से तरह-तरह की तस्वीरें काटकर रखता था। एक कापी बनाकर सतीश ने उसमें यह तस्वीरें चिपकाकर रखना शुरू कर दिया था। इस तरह कापी भर देने का उसे ऐसा नशा-सा चढ़ गया था कि कोई अच्छी पुस्तक देखने पर उसमें से तस्वीरें काट लेने को उसका मन छटपटा उठता था। इसी लालच के कारण कई बार उसे अपनी दीदी से फटकार खानी पड़ गई है।

प्रतिदान का भी समाज में एक उत्तरदायित्व होता है, यह बात आज सहसा सामने आने पर सतीश बहुत चिंतित हो उठा। अपने टूटे टीन के डिब्बे में उसने जो कुछ अपनी निजी संपत्ति सहेज रखी है उनमें से किसी पर से भी वह अपनी आसक्ति के लगाव को आसानी से न हटा सकेगा। सतीश का उद्विग्न चेहरा देखकर हँसकर ललिता ने उसके गाल में चुटकी काटते हुए कहा, "बस, रहने दे, इतना गंभीर होने की ज़रूरत नहीं है। चल,ये दो गुलाब के फूल ही उन्हें दे आना।"

इतनी जल्दी समस्या का निदान होता देखकर वह खिल उठा और फूल लेकर तत्काल अपने दोस्त का ऋण-मोचन करने चल पड़ा।

रास्ते में ही विनय से उसकी भेंट हो गई। दूर से ही, "विनय बाबू, विनय बाबू" पुकारता हुआ वह विनय के पास पहुँचा और कुर्ते की ओट में फूल छिपाए हुए बोला, "बताइए, मैं आपके लिए क्या लाया हूँ?"

विनय से हार मनवाकर उसने गुलाब निकाले। विनय ने कहा, "वाह, कितने सुंदर! लेकिन सतीश बाबू, यह आपकी अपनी वस्तु तो नहीं है। चोरी का माल लेकर अंत में कहीं पुलिस के चक्कर में तो पड़ना होगा?"

इन दो गुलाबों को ठीक अपनी वस्तु कहा जा सकता है या नहीं, इस बारे में सतीश थोड़ी देर असमंजस में रहा। फिर कुछ सोचकर बोला, "नहीं,वाह! ललिता ददी ने स्वयं मुझे दिए हैं आपको देने के लिए!"

यह बात यहीं समाप्त हो गई और तीसरे पहर उनके घर जाने का आश्वासन देकर विनय ने सतीश को विदा कर दिया।

ललिता की कल रात की बातों से चोट खाकर विनय उसकी पीड़ा भूल नहीं सका था। विनय के साथ किसी का कभी झगड़ा नहीं होता, इसीलिए ऐसी तीखी चोट की अपेक्षा वह किसी से नहीं करता। अब तक ललिता को वह सुचरिता की अनुवर्त्तिनी के रूप में ही देखता आया था। लेकिन कुछ दिन से ललिता को लेकर उसकी अवस्था वैसी ही हो रही थी जैसी उस हाथी की जो बराबर अंकुश का आघात खाते रहने में महावत को भूलने का मौका ही नहीं पाता। ललिता को कैसे थोड़ा-सा प्रसन्न करके शांति पाई जा सकती है, यही जैसे विनय की मुख्य चिंता बन गई थी। संध्या को घर लौटकर ललिता की तीखी व्यंग्य-भरी बातें एक-एक करके उसके मन में गूँज उठती थीं और उसकी नींद को भगा देती थी। मैं गोरा की छाया मात्र हूँ मेरा अपना कुछ नहीं है। ललिता यह कहकर मेरी अवज्ञा करती है, लेकिन यह बात बिल्कुल झूठ है। मन-ही-मन इसके विरुध्द वह अनेक युक्तियाँ जुटा लेता; लेकिन फिर भी वे सब उसके किसी काम न आतीं, क्योंकि ललिता ने ऐसा स्पष्ट आक्षेप तो कभी उस पर लगाया नहीं- इस बारे में बहस करने का तो मौका ही उसे कभी नहीं मिला। उसके पास जवाब में कहने के लिए इतनी बातें थीं कि उनका प्रयोग न कर सकने से उसका क्षोभ और बढ़ता जाता था। अंत में कल रात को जब हार मानकर भी उसने ललिता का चेहरा प्रसन्न न देखा तब घर आकर वह बहुत बेचैन हो गया। मन-ही-मन वह पूछने लगा- सचमुच क्या मैं इतनी अवज्ञा का पात्र हूँ?

इसलिए सतीश से जब उसने सुना कि ललिता ने सतीश के हाथ उसके लिए दो गुलाब के फूल भेजे हैं तब उसे गहरा उल्लास हुआ। उसने सोचा,अभिनय में भाग लेने के लिए राज़ी हो जाने पर ललिता ने संधि के प्रतीक के रूप में ही उसे ये दो गुलाब भेजे हैं। पहले उसने सोचा, फूल घर रख आऊँ। फिर उसका मन हुआ, नहीं, शांति के इन फूलों को माँ के पैरों पर चढ़ाकर पवित्र कर लाऊँ।

उस दिन जब तीसरे पहर विनय परेशबाबू के घर पहुँचा तब सतीश ललिता के पास बैठा अपनी स्कूल की पढ़ाई दोहरा रहा था। विनय ने ललिता से कहा, "लाल रंग तो लड़ाई का प्रतीक होता है, इसलिए संधि के फूल सफेद होने चाहए थे।"

ललिता ने बात न समझकर विनय के चेहरे की ओर देखा। तब विनय ने चादर की ओट से निकालकर सफेद कनेर का एक गुच्छा ललिता के सामने रखते हुए कहा, "आपके दोनों फूल कितने भी सुंदर रहे हों उनमें क्रोध के रंग की झलक थी ही, मेरे ये

फूल सुंदरता में उनके पास नहीं फटकते, किंतु शांति के शुभ्र रंग में नम्रतापूर्वक आपके सामने प्रस्तुत है।"

कानों तक लाल होते हुए ललिता कहा, "मेरे फूल इन्हें आप कैसे कहते हैं?"

कुछ अप्रतिभ हाते हुए विनय ने हा, "तब तो मैं ग़लत समझा। सतीश बाबू, किसके फूल आपने किसको दे दिए?'

सतीश ने ज़ोर से कहा, "वाह, ललिता दीदी ने तो देने को कहा था।"

विनय, "किसे देने को कहा था?"

सतीश, "आपको।"

और भी लाल होकर उठते हुए ललिता ने सतीश की पीठ पर थप्पड़ मारते हुए कहा, "तेरे-जैसा बुध्दू भी और नहीं देखा, विनय बाबू की तस्वीरों के बदले उन्हें फूल देना तू नहीं चाहता था?"

हतबुध्दि होकर सतीश ने कहा, "हाँ, तो! लेकिन तुम्हीं ने मुझे देने को नहीं कहा क्या?"

सतीश के साथ झगड़ा करने जाकर ललिता और भी उलझन में पड़ गई थी। विनय ने समझ लिया कि फूल ललिता ने भी भेजे थे, लेकिन वह अप्रकट ही रहना चाहती थी। उसने कहा, "खैर, आपके फूलों का दावा तो मैं छोड़ ही देता हूँ। फिर भी मेरे इन फूलों के बारे में तो कोई भूल नहीं है। हमारे विवाद के निबटारे के शुभ उपलक्ष्य में ये कुछ फूल.... "

सिर हिलाकर ललिता ने कहा, "हमारा विवाद ही कौन-सा है, और उसका निबटारा भी कैसा?"

विनय ने कहा, "तो शुरू से अंत तक सब माया है? विवाद भी झूठ, फूल भी झूठ, निबटारा भी झूठ! सीप देखकर चाँदी का भ्रम हुआ हो, यह नहीं; सीप ही भ्रम था! तब वह जो मजिस्ट्रेट साहब के यहाँ अभिनय करने की एक बात सुनी थी, वह भी क्या.... ?"

शीघ्रता से ललिता ने कहा, "जी नहीं, वह झूठ नहीं है। लेकिन उसे लेकर झगड़ा कैसा? आप यह क्यों सोचते हैं कि उसके लिए आपको राज़ी करने के लिए मैं कोई

लड़ाई छेड़ रही थी, या कि आपके राज़ी होने से मैं कृतार्थ हुई? अभिनय करना अगर आपको ठीक मालूम नहीं होता है, तो किसी की भी बात मानकर आप क्यों राज़ी हों?"

ललिता यह कहती हुई मेरे कमरे से चली गई। सभी कुछ उल्टा ही घटित हुआ। आज ललिता ने तय कर रखा था कि वह विनय के आगे अपनी भूल स्वीकार करेगी, और उससे यही अनुरोध करेगी कि वह अभिनय में भाग न ले, लेकिन बात जिस ढंग से चली और जिधर वह मुड़ गई, उसका नतीजा ठीक उल्टा हुआ। विनय ने समझा था कि उसने जो इतने दिन तक अभिनय के बारे में विरोध जाहिर किया था उसी का गुस्सा अब तक ललिता के मन में रह गया है। उसने सिर्फ ऊपर से हार मान ली है, किंतु मन में उसका विरोध बना हुआ है, इसी बात को लेकर ललिता का क्षोभ दूर नहीं हो रहा है। इस सारे प्रकरण से ललिता को इतनी पीड़ा पहुँची है, यह सोचकर विनय दु:खी हो उठा। उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि इस बात को लेकर वह हँसी में भी कोई जिक्र नहीं करेगा और ऐसी निष्ठा और कुशलता से यह काम संपन्न करेगा कि कोई उस पर काम के प्रति उदासीनता का आरोप न लगा सके।

सबरे से ही सुचरिता अपने सोने के कमरे में अकेली बैठकर 'ख्रीस्ट का अनुकरण' नामक अंग्रेज़ी धर्म-ग्रंथ पढ़ने का प्रयत्न कर रही थी। आज उसने अपने दूसरे नियमित कामों में भी योग नहीं दिया। बीचबीच में किताब से मन उचट जाने से उसके अक्षर उसके सामने धुँधले पड़ जाते थे। अगले ही क्षण अपने ऊपर वह क्रोधित होकर और भी वेग से अपने चित्त को पुस्तक में लगाने लगती थी, हार मानना किसी तरह नहीं चाहती थी।

अचानक दूर स्वर से उसे लगा, विनय बाबू आए हैं। चौंककर उसने पुस्तक रख दी, क्षुब्ध उसका मन बाहर के कमरे में जाने के लिए छटपटा उठा। फिर अपनी इस आकुलता पर भी होकर कुर्सी पर बैठकर उसने किताब उठा ली। कहीं फिर कोई आवाज़ न सुनाई दे, इसलिए अपने दोनों कान बंद करके वह पढ़ने का प्रयत्न करने लगी।

इसी समय कमरे में ललिता आई। उसके चेहरे की ओर देखकर सुचरिता बोली, 'अरी तुझे क्या हुआ है?"

बड़े ज़ोर से सिर हिलाकर ललिता ने कहा, "कुछ नहीं।"

सुचरिता ने कहा, "विनय बाबू आए हैं। वह शायद तुमसे बात करना चाहते हैं।"

और भी कोई विनय बाबू के साथ आया है या नहीं, सुचरिता यह प्रश्न आज किसी तरह नहीं पूछ सकी। और कोई आया है या नहीं, सुचरिता यह प्रश्न आज किसी तरह नहीं पूछ सकी। और कोई आया होता तो निश्चय ही ललिता उसका भी उल्लेख करती, किंतु फिर भी मन संशय रहित न हो सका। और अधिक अपने को बेचैन करने की कोशिश न करके घर आए अतिथि के प्रति कर्तव्य का ध्यान करके वह बाहर के कमरे की तरफ चल दी। ललिता से उसने पूछा, "तू नहीं जाएगी?"

कुछ अधीर होकर ललिता ने कहा, "तुम जाओ न, मैं पीछे आऊँगी।"

सुचरिता ने बाहर वाले कमरे में जाकर देखा, विनय सतीश से बात कर रहा था।

सुचरिता ने कहा, "बाबा बाहर गए हैं, अभी आ जाएँगे। माँ उस अभिनय की कविता कंठस्थ कराने के लिए लावण्य और लीला को लेकर मास्टर साहब के घर गई हुई है- ललिता किसी तरह नहीं गई। माँ कह गई है, आप आएँ तो आपको बिठाए रखा जाय- आज आपकी परीक्षा होगी।"

सुचरिता ने कहा, "सभी यदि अभिनेता हो जाएँ तो दुनिया में दर्शक कौन होगा?"

सुचरिता को इन सब मामलों से वरदासुंदरी यथासंभव अलग ही रखती थी। इसीलिए अपने गुण दिखाने के लिए उसे इस बार भी नहीं बुलाया गया था।

और दिनों इन व्यक्तियों के इकट्ठे होने पर बातों का अभाव नहीं होता था। आज दोनों ओर ही ऐसा कुछ हुआ था कि बातचीत किसी तरह जमी ही नहीं। सुचरिता गोरा की चर्चा न करने का प्रण करके आई थी। और विनय भी सहज भाव से पहले की भाँति गोरा की बात नहीं कर सका। उसे ललिता और शायद घर के सभी लोग गोरा का एक क्षुद्र अनुगामी-भर समझते हैं, यह सोचकर गोरा की चर्चा करने में उसे झिझक हो रही थी।

ऐसा कई बार हुआ कि पहले विनय आया है और उसके बाद ही गोरा भी आ गया है; आज भी ऐसा हो सकता है, यह सोचकर सुचरिता जैसे कुछ परेशान-सी थी। कहीं गोरा आ न जाय, इसे लेकर उसे एक भय था, और वह कहीं न आए, इस आशंका से उसे कष्ट भी हो रहा था।

विनय के साथ दो-चार उखड़ी-उखड़ी बातें करे सुचरिता और उपाय न देखकर सतीश की तस्वीरों वाली कापी लेकर उसके साथ तस्वीरों के बारे में बातचीत करने लगी।

बीच-बीच में तस्वीरें सजाने के ढंग की बुराई करके उसने सतीश को चिढ़ा दिया। बहुत बिगड़कर सतीश ऊँचे स्वर से बहस करने लगा और विनय मेज़ पर पड़े हुए अपने प्रति उपहार कनेर के गुच्छे की ओर देखता हुआ लज्जा और क्षोभ से भरा मन-ही-मन सोचने लगा कि और नहीं तो केवल शिष्टाचार के लिए ही ललिता को उसके फूल स्वीकार कर लेने चाहिए थे।

सहसा पैरों की आवाज़ से चौंककर सुचरिता ने देखा हरानबाबू कमरे में प्रवेश कर रहे थे। उसका चौंकना काफी स्पष्ट दीख गया था, इससे सुचरिता का चेहरा रक्ताभ हो उठा था। कुर्सी पर बैठते हुए हरानबाबू बोले, "कहिए, आपके गौर बाबू नहीं आए?"

हरानबाबू के इस गैर-ज़रूरी प्रश्न से विरक्त होकर विनय ने कहा, "क्यों, आपको उनसे कुछ काम है क्या?"

हरानबाबू ने कहा, "आप हों और वह न हों, ऐसा तो कम ही देखा जाता है, इसीलिए पूछा।"

मन-ही-मन विनय को बड़ा गुस्सा आया। कहीं वह प्रकट न हो जाए, इसलिए उसने संक्षेप में कहा, "वह कलकत्ता में नहीं हैं।"

हरान, "प्रचार करने गए हैं शायद?"

विनय का गुस्सा और बढ़ गया। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। सुचरिता भी बिना कुछ कहे उठकर चली गई। तेज़ी से उठकर हरानबाबू सुचरिता के पीछे चले, लेकिन उस तक पहुँच नहीं सके। उन्होंने दूर से ही पुकारा, "सुचरिता, एक बात कहनी है।"

सुचरिता ने कहा, "मेरी तबीयत ठीक नहीं है।" कहने के साथ-साथ उसके कमरे का किवाड़ बंद हो गया।

इसी समय वरदासुंदरी आकर अभिनय में विनय का रोल उसे समझाने के लिए उसे दूसरे कमरे में लिवा ले गई। थोड़ी देर बाद ही लौटकर उसने देखा कि अकस्मात मेज़ पर से फूल गायब हो गए हैं। उस रात ललिता वरदासुंदरी के अभिनय के मैदान में नहीं आई और सुचरिता भी अपनी पुस्तक, 'ख्रीस्ट का अनुकरण' गोद में रखे-रखे, रोशनी की एक कोने में ओट देखकर बहुत रात बीते तक द्वार के बाहर अंधकार की ओर देखती बैठी रही। उसने जैसे मरीचिका-सा अपरिचित एक अपूर्व देश देखा था, अब तक के जीवन के सारे अनुभव से वह देश बिल्कुल भिन्न था और इसीलिए

उसके झरोखों में जो दिए जलते थे, वे अंधेरी रात में चमकते नक्षत्रों की तरह एक रहस्यपूर्ण दूरी से मन को भीत कर रहे थे। उसका मन कह रहा था- मेरा जीवन कितना तुच्छ है- अब तक जिसे अटल समझती रही वह सब सन्दिग्ध हो गया है और जो प्रतिदिन करती रही वह अर्थहीन- वहीं शायद सब ज्ञान संपूर्ण होगा, कर्म महान हो उठेगा और जीवन सार्थकता पा सकेगा-उस अपूर्व, अपरिचित, भयंकर देश के अज्ञात सिंह द्वार के सामने कौन मुझे ले आया मेरा हृदय क्यों ऐसे काँप रहा है, क्यों आगे बढ़ना चाहने पर मेरे पैर ऐसे डगमगा जाते हैं?

अभिनय के पूर्वाभ्यास के लिए विनय रोज़ाना आने लगा। एक बार सुचरिता उसकी ओर देख भर लेती, फिर अपने हाथ की पुस्तक की ओर मन लगा देती या अपने कमरे की ओर चली जाती। विनय के अकेले आने का अधूरापन प्रतिदिन उसके मन को पीड़ा पहुँचाता, किंतु वह कभी कोई प्रश्न पूछती। किंतु ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते, गोरा के विरुध्द सुचरिता के मन में एक शिकायत का-सा भाव बढ़ता जाता। मानो उनकी उस दिन जो बात हुई थी, उसमें कुछ ऐसा निहित रहा था कि गोरा फिर आने के लिए वचनबध्द है।

अंत में सुचरिता ने जब सुना कि गोरा अचानक बिना कारण ही कुछ दिन के लिए कहीं घूमने निकल गया है और उसका कुछ पता-ठिकाना नहीं है, तब उसने बात को एक मामूली खबर की तरह उड़ा देना चाहा, किंतु तब भी उसके मन में कसक बनी ही रही। काम करते-करते सहसा यह बात उसे याद आ जाती-कभी अनमनी बैठी-बैठी वह चौंककर यह पाती कि वह मन-ही-मन ठीक यही बात सोच रही थी।

उस दिन गोरा के साथ उसकी बातचीत के बाद अचानक वह ऐसे लापता हो जाएगा, सुचरिता ने ऐसी कल्पना भी नहीं की थी। गोरा के मत से अपने संस्कारों के कारण इतना अधिक भिन्न होने पर भी उस दिन उसके भीतर विद्रोह की प्रवृत्ति ज़रा भी नहीं रही थी। गोरा के मत-मान्यताओं को उसने ठीक-ठीक भले ही न समझा हो, किंतु व्यक्ति गोरा को वह जैसे कुछ-कुछ समझ सकी थी। गोरा के मत चाहे जो रहे हों, उनसे वह व्यक्ति तुच्छ नहीं हो गया है, अवज्ञा के योग्य नहीं हो गया है बल्कि उनसे उसके आत्म की शक्ति प्रत्यक्ष हुई है- यह उसने प्रबलता से अनुभव किया था। और किसी के मुँह से वे सब बातें वह न सह सकती, बल्कि क्रुध्द होती, उस व्यक्ति को मूर्ख समझती, उसे डाँट-डपटकर सुधारने के लिए उत्तेजित हो उठती, लेकिन गोरा के संबंध में उस दिन ऐसा कुछ नहीं लगा। गोरा की बातों ने उसके दृढ़ चरित्र के, उसकी बुध्दि-गंभीर मर्मभेदी स्वर की प्रबलता के साथ मिलकर एक जीवंत और

सत्य आकार धारण कर लिया था। ये सब मत और विश्वास चाहे सुचरिता स्वयं न भी अपना सके, किंतु और कोई उन्हें इस प्रकार पूरी बुध्दि से, पूरी श्रध्दा से, और संपूर्ण जीवन अर्पित करके ग्रहण करे तो उसे धिक्कारने जैसी कोई बात नहीं है, बल्कि विरोध संस्कारों का अतिक्रमण करके उस पर श्रध्दा भी की जा सकती है, उस दिन सुचरिता के मन पर यह भाव पूरी तरह छा गया था। मन की ऐसी अवस्था सुचरिता के लिए बिल्कुल नहीं थी। मतभेद होने पर वह अत्यंत असहिष्णु थी। परेशबाबू के एक तरह निर्लिप्त, समाहित, शांत जीवन का उदाहरण सामने रहने पर भी, सुचरिता क्योंकि बचपन से ही सांप्रदायिकता से घिरी रही थी, इसलिए मत-सिध्दांतों को वह अत्यंत एकांत रूप से ग्रहण करती थी। पहले-पहल उसी दिन व्यक्त मत को मिला हुआ देखकर उसने जैसे एक सजीव संपूर्ण पदार्थ की रहस्यमय सत्ता का अनुभव किया। मानव-समाज को केवल मेरा पक्ष और तुम्हारा पक्ष नामक दो सफेद और काले भागों में बिल्कुल अलग-अलग बाँटकर देखने की भेद-दृष्टि पहले-पहल वह उसी दिन भूल सकी थी और भिन्न मत के मनुष्य को भी प्रथमत: मनुष्य मानकर ऐसे भाव से देख सकी थी कि मत की भिन्नता गौण हो गई थी।

सुचरिता ने उस दिन अनुभव किया कि उसके साथ बातचीत करने में गोरा को एक आंनद की अनुभूति होती है। यह क्या सिर्फ अपनी राय जाहिर करने का ही आनंद था? उस आनंद देने में क्या सुचरिता का कोई योगदान नहीं था? शायद नहीं था। शायद गोरा के निकट किसी व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं है, वह अपने मत और उद्देश्य लेकर ही सभी से दूर हो गया है- मनुष्य उसके लिए केवल मत का प्रयोग करने के साधन हैं।

कुछ दिनों से सुचरिता उपासना में विशेष रूप से मन लगाने लगी थी। मानो वह पहले से भी अधिक परेशबाबू का संवत चाहने लगी थी। एक दिन परेशबाबू अकेले अपने कमरे में बैठे पढ़ रहे थे कि सुचरिता भी चुपचाप जाकर उनके पास बैठ गई।

किताब मेज़ पर रखते हुए परेशबाबू ने पूछा, "क्यों राधो?"

सुचरिता ने कहा, "कुछ नहीं।"

उत्तर देकर मेज़ पर रखे हुए कागज़ और किताबें, जो कि पहले से ही व्यवस्थिति और सजाकर रखे हुए थे, इधर-उधर करके फिर से सँवारकर रखने लगी। थोड़ी देर बाद बोली, "बाबा, जैसे पहले तुम मुझे पढ़ाते थे, अब क्यों नहीं पढ़ाते?"

परेशबाबू ने स्नेहभाव से तनिक मुस्कराकर कहा, "मेरी छात्र तो मेरे स्कूल से उत्तीर्ण होकर चली गई। अब तो तुम खुद पढ़कर समझ सकती हो।"

सुचरिता ने कहा, "नहीं, मैं कुछ नहीं समझ सकती, मैं पहले की तरह तुमसे पढ़ूँगी।"

परेशबाबू ने कहा, "अच्छा ठीक है, कल से पढ़ाऊँगा।"

फिर थोड़ी देर चुप रहकर सुचरिता सहसा बोल उठी, "उस दिन विनय बाबू से जाति भेद की बहुत-सी बातें सुनीं- तुमने मुझे उसके बारे में कभी कुछ क्यों नहीं समझाया?"

परेशबाबू ने कहा, "बेटी, तुम तो जानती हो तुम्हारे साथ मैंने बराबर ऐसा व्यवहार रखा है कि तुम सब कुछ अपने आप सोचने-समझने की कोशिश करो मेरी या किसी और की भी बात केवल अभ्यस्त होने के कारण नहीं मानो। कोई सवाल ठीक से मन में उठने से पहले ही कोई उपदेश देना और भूख लगने से पहले ही खाना परोस देना एक ही बात है, उससे केवल अरुचि और अपच होती है। तुम जब भी मुझसे प्रश्न पूछोगी, अपनी समझ से मैं उसका उत्तर दूँगा।"

सुचरिता ने कहा, "मैं प्रश्न ही पूछ रही हूँ, जाति-भेद को हम लोग बुरा क्यों कहते हैं?"

परेशबाबू ने कहा, "एक बिल्ली को थाली के पास बिठाकर खाने से तो दोष नहीं होता, लेकिन एक मनुष्य के उस कमरे में आने भर से भी खाना फेंक देना होता है, जिस जाति-भेद के कारण एक मनुष्य के प्रति दूसरे मनुष्य में ऐसा अपमान और घृणा का भाव पैदा हो उसे अधर्म न कहा जाय तो क्या कहा जाय? जो लोग मनुष्य की ऐसी भयानक उपेक्षा कर सकते हैं वे कभी दुनिया में बड़े नहीं हो सकते, दूसरों की उपेक्षा उन्हें भी सहनी होगी।"

गोरा के मँह से सुनी हुई बात का अनुसरण करते हुए सुचरिता ने कहा, "आज-कल के समाज में जो विकृतियाँ आ गई हैं उनमें अनेक दोष हो सकते हैं, वे दोष तो समाज की सभी चीज़ों में आ गए हैं- इसी कारण क्या असल चीज़ को भी दोषी ठहराया जा सकता है?"

अपने स्वाभाविक शांत स्वर में परेशबाबू ने कहा, "असल चीज़ कहाँ है, यदि यह जानता तो बता सकता। मैं तो ऑखों से देखता हूँ कि हमारे देश में मनुष्य मनुष्य से

असहनीय घृणा करता है और उससे हम सब अलग-अलग हुए जा रहे हैं, ऐसी स्थिति में एक काल्पनिक असल चीज़ की बात सोचकर मन को दिलासा देने का क्या अर्थ होता है?"

सुचरिता ने फिर गोरा की बात को ही दोहराते हुए कहा**,** "लेकिन सभी को समान दृष्टि से देखना तो हमारे देश का चरम तत्व रहा है**?"**

परेशबाबू बोले, "समान दृष्टि से देखना तो बुध्दि की बात है, हृदय की बात नहीं। समान दृष्टि में प्रेम भी भी नहीं है, घृणा भी नहीं है- समान दृष्टि तो राग-द्वेष से परे है। मनुष्य का हृदय ऐसी राग-द्वेषविहीन जगह बराबर नहीं टिक सकता। इसीलिए हमारे देश में ऐसे साम्य-तत्व के रहते भी नीच जाति को देवालय तक में घुसने नहीं दिया जाता। जब देवता के घर में भी हमारे देश में समता नहीं है, तब दर्शन-शास्त्र में उस तत्व के रहने,न रहने से क्या होगा!"

बहुत देर तक सुचरिता चुप बैठी मन-ही-मन परेशबाबू की बात समझने का प्रयत्न करती रही। अंत में बोली, "अच्छा बाबा, तुम विनय बाबू वगैरह को ये सब बातें समझाने का उपाय क्यों नहीं करते?"

परेशबाबू थोड़ा हँसकर बोले, "बुध्दि कम होने के कारण विनय बाबू वगैरह ये सब बातें न समझते हों ऐसा नहीं है, बल्कि उनकी बुध्दि अधिक है इसीलिए वे समझना नहीं चाहते केवल समझाना ही चाहते हैं। जब वे लोग धर्म की राह से अर्थात् सबसे बड़े सत्य की राह से ये बातें सच्चे दिल से समझना चाहेंगे अभी वे एक दूसरी राह से देख रहे हैं, मेरी बात अभी उनके किसी काम न आएगी।"

यद्यपि गोरा की बात सुचरिता ने लगन के साथ ही सुनी थी, फिर भी वह उसके संस्कारों के विपरीत जाती थी, इसीलिए उसे कष्ट होता था और अशांति से घिरी रहती थी। परेशबाबू से बात करके आज उसे उस विरोध से थोड़ी देर के लिए मुक्ति मिली। गोरा, विनय या और कोई भी किसी विषय को परेशबाबू से अधिक अच्छे ढंग से समझा सकता है, यह बात सुचरिता किसी तरह मन में नहीं आने देना चाहती। जिनका परेशबाबू से मतभेद हुआ है, सुचरिता उन पर क्रुध्द हुए बिना नहीं रह सकी है। इधर गोरा से परिचय होने के बाद वह गोरा की बात को क्रोध अथवा अवज्ञा करके उड़ा नहीं पा रही थी, इसीलिए सुचरिता को क्लेश हो रहा था। इसी कारण शिशुकाल की तरह फिर परेशबाबू की ज्ञान-छाया के नीचे निर्भय आश्रय पाने के लिए उसका मन व्याकुल हो उठा था। कुर्सी से उठकर दरवाजे तक जाकर सुचरिता ने फिर

लौटकर परेशबाबू के पीछे खे हो उनकी कुर्सी की पीठ पर हाथ टिकाकर कहा, "बाबा, आज शाम को आपकी उपासना के समय मैं भी साथ बैठूँगी।"

परेशबाबू ने कहा, "अच्छा।"

तदुपरांत अपने कमरे में जाकर सुचरिता किवाड़ बंद करे एकाग्र हो गोरा की बात को एकदम व्यर्थ करने का प्रयत्न करने लगी। लेकिन गोरा का विवेक और विश्वास से प्रदीप्त चेहरा ही उसकी ऑखों के सामने घूमता रहा। उसे लगता रहा कि गोरा की बात केवल बात भर नहीं है, वह मानो गोरा स्वयं है, उस बात की एक आकृति है, उसमें गति है, प्राण हैं- वह विश्वास की दृढ़ता और स्वदेश-प्रेम के दर्द से भरा हुआ है वह केलव मत नहीं है कि उसका प्रतिवाद करके उसे ख़त्म किया जा सके- वह एक संपूर्ण व्यक्ति है और वह व्यक्ति भी साधारण व्यक्ति नहीं है। उसे हटा देने के लिए हाथ कार्यरत ही नहीं होता। इस गहरे द्वंद्व में पड़कर सुचरिता को जैसे रोना आ गया। कोई उसे इतनी बड़ी दुविधा में डालकर पूर्णत: उदासीन भाव से अचानक दूर चला जा सकता है! यह बात सोचकर उसका हृदय फटने लगा, पर साथ ही अपने कष्ट पाने पर सुचरिता का अपने प्रति धिक्कार भी सीमाहीन था।

अभिनय के मामले में तय हुआ कि अंग्रेज़ कवि ड्राइडन की एक संगीत कविता विनय नाटकीय भावाभिव्यक्ति के साथ पढ़ता जाएगा और रंगमंच पर लड़कियाँ उपयुक्त साज-सज्जा के साथ कविता में वर्णित दृश्य का मूक अभिनय करती रहेंगी। इसके अलावा लड़कियाँ अंग्रेज़ी कविता की पुनरावृत्तिऔर गान आदि भी करेंगी।

विनय को वरदासुंदरी ने भरोसा दिलाया था कि वे सब मिलकर उसकी तैयारी करा देंगी। वह स्वयं तो बहुत साधारण अंग्रेज़ी ही जानती थीं, किंतु अपने समाज के दो-एक पंडितों पर भरोसा कर रही थीं। लेकिन जब अभ्यास के लिए सब जमा हुए तो अपनी आवृत्ति के द्वारा विनय ने वरदासुंदरी के पंडित समाज को विस्मित कर दिया। अपनी मंडली से बाहर के इस आदमी को सिखा-पढ़ाकर तैयार करने के श्रेय से वरदासुंदरी वंचित रह गईं। इससे पहले जिन लोगों ने विनय को आम आदमी समझकर उसकी परवाह नहीं की थी, अब उसका अंग्रेज़ी का ज्ञान देखकर उसका सम्मान करने को विवश हो गए। यहाँ तक कि हरानबाबू ने भी विनय से कभी-कभार अपने पत्र में लिखने का अनुरोध किया, और सुधीर भी उनकी छात्र-सभा में विनय से कभी-कभी अंग्रेज़ी में वक्तव्य देने का आग्रह करने लगा।

ललिता की हालत अजब थी। विनय को किसी से कोई सहायता नहीं लेनी पड़ी इससे वह बहुत प्रसन्न थी, लेकिन इसी से मन-ही-मन उसे एक असंतोष भी था। विनय उन सबमें किसी से कम नहीं है, बल्कि उन सबसे पारंगत ही है, इससे मन-ही-मन वह स्वयं को श्रेष्ठ समझेगा और उनसे कुछ भी सीखने की उसे आवश्यकता न होगी, यह बात उसे कचोट रही थी। विनय के संबंध में वह ठीक क्या चाहती है, उसका मन क्या होने से अपनी सहज अवस्था में आ सकेगा, यह वह स्वयं भी नहीं समझ पाती थी। इससे उसकी अप्रसन्नता छोटी-छोटी बातों में भी रूखे ढंग से प्रकट होकर घूम-फिरकर विनय को ही निशाना बनाने लगी। विनय के प्रति यह न्याय नहीं है और शिष्टाचार भी नहीं है। यह वह खूब समझ रही थी। समझकर उसे दुःख होता था और वह अपने को संयत करने की काफी कोशिश भी करती थी लेकिन अचानक किसी बहुत ही साधारण बात पर उसके अंतस् की एक अंतर्ज्वाला संयम का शासन तोड़कर फूट पड़ती थी। वह स्वयं नहीं जान पाती थी कि ऐसा क्यों होता है। अब तक जिस चीज़ में भाग लेने के लिए वह लगातार विनय पर दबाव डालती रही थी, अब उसी से हटाने के लिए उसने विनय की नाक में दम कर दिया। लेकिन विनय अकारण ही अब सारे आयोजन को बिगाड़कर कैसे अलग हो जाय? समय भी अधिक नहीं था और अपने में एक नई निपुणता पहचानकर विनय को कुछ उत्सह भी हो आया था। अंत में ललिता ने वरदासुंदरी से कहा, "मैं इसमें नहीं रहूँगी।"

अपनी मँझली लड़की को वरदासुंदरी अच्छी तरह जानती थीं, इसीलिए अत्यंत शंकित होकर उन्होंने पूछा, "क्यों?"

ललिता ने कहा, "मुझसे नहीं होता।"

असल में बात यह बात थी कि जब से विनय को अनाड़ी संभव न रहा, तभी से किसी तरह भी ललिता विनय के सामने कविता की आवृत्ति या अभिनय का अभ्यास करने को राज़ी नहीं होती थी। वह कहती- मैं अपने-आप अलग अभ्यास करूँगी। इससे हालाँकि सभी के अभ्यास में बाधा पड़ी थी, लेकिन ललिता को किसी तरह मनाया नहीं जा सका। अंत में हार मानकर अभ्यास से ललिता को अलग करके ही काम चलाना पड़ा।

किंतु जब ललिता ने अंतिम समय पर बिल्कुल ही अलग हो जाना चाहा तब वरदासुंदरी के सिर पर जैसे बिजली गिरी। वह जानती थीं कि इस समस्या को सुलझाना उनके वश की बात नहीं है, इसलिए उन्होंने परेशबाबू की शरण ली। असाधारण बातों में परेशबाबू कभी उन लड़कियों की इच्छा-अनिच्छा में हस्तक्षेप

नहीं करते थे। लेकिन चूँकि उन्होंने मजिस्ट्रेट को वचन दिया है और उसी के अनुसार उस तरफ से सारा प्रबंध भी किया गया है, समय भी बहुत कम है, ये सब बातें सोचकर परेशबाबू ने ललिता को बुलाकर उसके सिर पर हाथ फेरकर कहा, "ललिता, अब तुम्हारा अलग हो जाना तो ठीक नहीं होगा।"

रूँधे हुए गले से ललिता ने कहा, "बाबा, मुझसे नहीं होता। मुझे आता ही नहीं।"

परेशबाबू बोले, "अच्छा नहीं कर पाओगी, उसमें तुम्हारा अपराध नहीं होगा, पर करोगी ही नहीं तो अन्याय होगा।"

सिर झुकाए ललिता खड़ी रही। परेशबाबू कहते गए, "बेटी जब तुमने जिम्मा लिया है तब निबाहना तो तुम्हें होगा ही। कहीं अहंकार को ठेस न लगे, यह सोचकर भागने का समय तो अब नहीं है। लगने दो ठेस, उसकी उपेक्षा करके भी तुम्हें कर्तव्य करना ही होगा। क्या इतना भी नहीं कर सकोगी?"

मुँह उठाकर ललिता ने पिता की ओर देखकर कहा, "कर सकूँगी।"

उस दिन शाम को विशेष रूप से विनय के सामने ही अपना सब संकोच त्यागकर एक अतिरिक्त जोश के साथ, स्पर्धा लगाकर, ललिता अपने कर्तव्य की ओर अग्रसर हुई। विनय ने अब तक उसकी आवृत्ति नहीं सुनी थी, आज सुनकर चकित रह गया। इतना स्पष्ट, अत्रुटि उच्चारण-कहीं कोई अटक नहीं, और भाव-प्रकटन में एक ऐसा नि:संशय उत्साह कि उसे सुनकर विनय को आशातीत आनंद हुआ। ललिता का मृदु कंठ-स्वर बहुत देर तक उसके कानों में गूँजता रहा।

कविता की भावपूर्ण अच्छी आवृत्ति करने वाला श्रोता के मन में एक विशेष मोह उत्पन्न करता है। कविता का भाव उसके पढ़ने वाले को महिमा मंडित करता है, वह उसके कंठ-स्वर, उसकी मुख-राशि और उसके चरित्र में हैं, वैसे ही कविता की आवृत्ति करने वाले को काव्यपाठ।

विनय के लिए ललिता भी कविता द्वारा मंडित होने लगी। इतने दिन तक अपनी तीखी बातों से वह अनवरत विनय को उत्तेजित करती रही थी। जैसे जहाँ चोट लगी हो बार-बार हाथ वहीं पहुँचता है, वैसे ही विनय भी कई दिन से ललिता की तीखी बातों और दंशक हास्य के सिवा कुछ सोच ही नहीं पाता था। ऐसा ललिता ने क्यों किया, वैसा क्यों कहा, बार-बार उसे इसी बात के बारे में सोचना पड़ता रहा है। ललिता के क्षोभ का रहस्य जितना ही वह नहीं समझ सका उसी अनुपात में ललिता

की चिंता उसके मन पर और अधिकार जमाती रही हैं। सबेरे नींद से जागकर सहसा यही बात उसे याद हो आई है परेशबाबू के घर जाते समय प्रतिदिन उसके मन में यह संदेह उठा है कि आज ललिता न जाने कैसे पेश आएगी। जिस दिन ललिता ज़रा-सी प्रसन्न दिखी है, उस दिन विनय ने राहत की लंबी साँस ली है और इस बात को लेकर विचार किया है कि कैसे उसके इस भाव को स्थाई बनाया जा सकता है, यद्यपि ऐसा कोई उपाय कभी नहीं सोच पाया जो उसके वश का हो।

पिछले कई दिन के इस मानसिक द्वंद्व के बाद ललिता की काव्य आवृत्ति के माधुर्य की विशेषता ने विनय को प्रबल रूप से प्रभावित किया। उसे इतना अच्छा लगा कि वह यह सोच ही नहीं पाया कि किन शब्दों में उसकी प्रशंसा करे। अच्छा-बुरा कुछ भी ललिता के मुँह पर कहने का उसे साहस नहीं होता क्योंकि मानव-चरित्र का यह साधारण नियम कि अच्छा कहने से अच्छा लगे, ललिता पर लागू नहीं भी हो सकता है- बल्कि शायद साधारण नियम होने के कारण ही लागू न हो सके। इसीलिए विनय ने उत्फुल्ल हृदय से वरदासुंदरी के सामने ललिता की योग्यता की अधिक ही प्रशंसा की। इससे विनय की विद्या और बुध्दि के बारे में वरदासुंदरी की श्रध्दा और भी बढ़ गई है।

अचरज की एक और भी बात देखने में आई। ललिता ने ज्यों ही स्वयं यह अनुभव किया कि उसकी आवृत्ति और अभिनय निर्दोष हुए हैं, वह अपने कर्तव्य की दुरूहता के पार वैसे ही निरास भाव से चल निकली, जैसे कोई सुगठित नौका लहरों को काटती हुई बढ़ती चली जाती है। विनय के प्रति उसकी कटुता भी जाती रही और उसको विमुख करने की चेष्टा भी उसने छोड़ दी। बल्कि अभिनय के बारे में उसका उत्साह बहुत बढ़ गया और अभिनय के मामले में वह विनय को पूरा सहयोग देने लगी, यहाँ तक कि आवृत्ति के या और किसी भी विषय के संबंध में विनय से उपदेश लेने में भी उसे आपत्ति न रही।

ललिता में इस बदलाव से विनय की छाती पर से जैसे एक भारी बोझ-सा उतर गया। वह इतना आनंद मग्न हुआ कि वह जब-तब आनंदमई के पास जाकर छोटे बालकों की भाँति ऊधम करने लगा। सुचरिता के पास बैठकर बहुत सारी बातें करने की सूझ भी उसे थी, लेकिन सुचरिता से आज-कल उसकी भेंट ही न होती। अवसर मिलते ही वह ललिता के साथ बातचीत करने बैठ जाता, हालाँकि ललिता से बातें करने में उसे विशेष सतर्क रहना पड़ता, ललिता मन-ही-मन उस पर और उसकी सभी बातों पर बड़ी कड़ाई के साथ मनन करती है, यह जानकर ललिता के सामने उसकी बातों की

धारा सहज वेग से नहीं बहती थी। ललिता बीच-बीच में कह उठती थी, "आप ऐसे क्यों बातें करते हैं मानो किताबों में से पढ़कर आए हों और उसे ही दुहरा रहे हों?"

विनय जवाब देता, "मैं इतने वर्षों से केवल किताबें ही पढ़ता रहा हूँ, इसीलिए मन भी छपी हुई किताब-जैसा हो गया है।"

ललिता कहती, "आप ज्यादा अच्छी तरह बात कहने की चेष्ट न किया करें- अपनी बात अपने सीधे-सरल ढंग से कह दिया करें। आप ऐसे सँवारकर करें-अपनी बात अपने सीधे-सरल ढंग से कह दिया करें। आप ऐसे सँवारकर बात कहते हैं तो मुझे भ्रम होता है कि और किसी की बात को आप सजा-सँवारकर कह रहे हैं।

इसलिए कभी कोई बात अपनी स्वाभाविक क्षमता के कारण साफ-सुथरे ढंग से विनय के मन में आती भी थी तो ललिता से कहते समय वह यत्नपूर्वक उसे सरल बनाकर और छोटी करके कहता था। कोई अलंकृत वाक्य सहसा उसके मुँह से निकल जाने पर वह झेंप जाता था।

ललिता के मन के भीतर अकारण घिरी हुई घटा छट जाने से उसका हृदयाकाश उज्ज्वल हो उठा। उसमें यह परिवर्तन देखकर वरदासुंदरी को भी आश्चर्य हुआ। अब पहले की भाँति ललिता बात-बात में आपत्ति करके विमुख होकर नहीं बैठ जाती, बल्कि सब कामों में उत्साह के साथ सहयोग देती है। आगामी अभिनय की साज-सज्जा आदि सभी विषयों में उसे रोज़ाना तरह-तरह की नई बातें सूझती रहतीं और उन्हीं को लकर वह सभी को परेशान कर देती। इस मामले में वरदासुंदरी का कितना ही अधिक उत्साह रहा हो खर्च की बात भी वह सोचती थीं, इसीलिए जब ललिता अभिनय के मामले में उदासीन थी, तब उनके चिंतित होने का जितना कारण था, अब उसकी उत्साहित अवस्था से भी उतना ही संकट पैदा हो गया। लेकिन ललिता की उत्तेजित कल्पना-वृत्ति पर चोट करने का भी साहस नहीं होता था, क्योंकि ललिता को जिस काम में उत्साह होता उसमें थोड़ी भी कमी रह जाने से वह इतनी उदासीन हो जाती थी कि फिर उस काम में सहयोग देना ही उसके लिए संभव नहीं रह जाता था।

अनेक बार अपने उत्साह में ललिता के पास भी जाती। सुचरिता हँसती, बात करती; ललिता को उसकी बातों में बार-बार एक रुकावट का अनुभव होता, जिसके कारण नाराज़ होकर वह लौट आती।

उसेन एक दिन परेशबाबू से जाकर कहा, "बाबा, सुचि दीदी कोने में बैठी-बैठी किताब पढ़ेंगी और हम नाटक करने जाएँगी, यह नहीं होगा। उन्हें भी हमारे साथ शामिल होना होगा।"

कुछ दिनों से परेशबाबू भी सोच रहे थे कि न जाने क्यों सुचरिता अपनी बहनों से दूर हटती जा रही है। उन्हें शंका हो रही थी कि ऐसी हालत उसके चरित्र के लिए स्वास्थ्यकर न होगी। ललिता की बात सुनकर आज उन्हें लगा कि आमोद-प्रमोद में सब साथ शामिल न होने से सुचरिता का यह दुराव बढ़ता ही जाएगा। उन्होंने ललिता से कहा, "अपनी माँ से कहो न!"

ललिता ने कहा, "माँ से तो कहूँगी, किंतु सुचि दीदी को राज़ी करने का ज़िम्मा आपको लेना होगा।"

जब परेशबाबू ने सुचरिता से कह दिया तब वह और आपत्ति न कर सकी तथा अपने कर्तव्य-पालन में लग गई।

सुचरिता के अपने एकांत कोने से निकलकर बाहर आते ही विनय ने फिर उसके साथ पहले की भाँति बातचीत का सिलसिला जमाने की चेष्टा की। पर इधर कई दिनों से न जाने क्या हो गया था कि वह सुचरिता के पास पहुँच ही नहीं पाता। उसके चेहरे पर, उसकी दृष्टि में एक ऐसी दूरी रहती कि उसकी ओर बढ़ने में झिझक होती। पहले भी काम-काज और मिलने-जुलने में सुचरिता में एक शिथिलता रहती थी, पर अब तो वह जैसे बिल्कुल अलग हो गई थी। अभिनय और अभ्यास में वह जो योग देने लगी थी, उससे भी उसका अलगाव कम नहीं हुआ। काम के समय उसका जितना भाग होता, पूरा होते ही वह अलग हो जाती। सुचरिता की इस दूरी से विनय को पहले तो बड़ी ठेस पहुँची। विनय मिलनसार आदमी था,जिनसे उसका अपनत्व होता उनकी ओर से किसी प्रकार की अड़चन होने पर विनय को बड़ी पीड़ा होती। इस परिवार में इतने दिनों से विशोष रूप से वह सुचरिता से ही सम्मान पाता रहा है, अब बिना कारण सहसा उपेक्षित होने से उसे बड़ा कष्ट हुआ। लेकिन जब उसने देखा कि ऐसे ही कारण से ललिता भी सुचरिता पर नाराज़ हो रही है, तब उसे सांत्वना मिली और उसकी घनिष्ठता ललिता से और भी बढ़ गई। सुचरिता को उसे और दूर हटाने का मौका न देकर उसने स्वयं ही सुचरिता का निकट-संपर्क छोड़ दिया और देखते-देखते इस प्रकार सुचरिता विनय से बहुत बहुत दूर चली गई।

इस बार इतने दिन गोरा के अनुपस्थिति रहने से विनय परेशबाबू के परिवारजनों से बिना किसी बाधा के अच्छ तरह घुल-मिल गया था। विनय के स्वभाव का इस प्रकार निर्बाध परिचय पाकर परेशबाबू के घर के सभी लोग पूर्णरूप से संतुष्ट थे। उधर विनय को भी इस तरह अपनी सहज-स्वाभाविक अवस्था प्राप्त करके जो आनंद मिला, वह पहले कभी नहीं मिला था। वह इन सबका अच्छा लगता है, इस बात का अनुभव करके उसकी अच्छा लगने की शक्ति जैसे और बढ़ गई।

अपनी प्रकृति के इस विकास के समय, अपने को एक स्वतंत्र सत्ता के रूप में अनुभव करने के समय सुचरिता विनय से दूर हो गई, और कसी दूसरे समय यह क्षति, इसका आघात विनय के लए असह्य होता, पर इस समय वह उसे सहज ही अप्रभावी कर गया। यह भी आश्चर्य की बात थी कि ललिता ने भी सुचरिता का भाव-परिवर्तन जानकार भी पहले की तरह उसके प्रति नाराज़गी नहीं दिखाई। क्या काव्य-आवृत्ति और अभिनय के उत्साह ने ही उस पर पूरा अधिकार कर लिया था?

इधर हरानबाबू भी अभिनय में सुचरिता को योग देते देखकर सहसा उत्साहित हो उठे। उन्होंने स्वयं प्रस्ताव किया कि वह भी 'पेराडाइज़ लास्ट'के एक अंश का पाठ करेंगे और ड्राइडन के काव्य की आवृत्ति की भूमिका के रूप में संगीत की मोहिनी शक्ति के बारे में एक छोटा-सा भाषण भी देंगे। वरदासुंदरी को मन-ही-मन यह बहुत बुरा लगा, और ललिता भी इससे प्रसन्न नहीं हुई। हरानबाबू मजिस्ट्रेट से स्वयं मिलकर पहले ही यह मामला पक्का कर आए थे। जब ललिता ने कहा कि कार्यक्रम को इतना लंबा कर देने पर मजिस्ट्रेट शायद एतराज़ करें तब हरानबाबू ने जेब से मजिस्ट्रेट का कृतज्ञता प्रकट करता हुआ पत्र निकालकर ललिता को दिखाकर उसे निरुत्तर कर दिया।

बिना कारण गोरा यात्रा पर चला गया, कब लौटकर आयेगा यह कोई नहीं जानता। सुचरिता ने यद्यपि सोच रखा था कि इस बारे में किसी बात को मन में स्थान न देगी, फिर भी रोज ही उसके मन में यह आशा उठती कि शायद आज गोरा आ जाए। वह इस आशा को किसी तरह मन से न निकाल पाती। जिस समय गोरा की उदासीनता और अपने मन की विवशता के कारण सुचरिता को बहुत अधिक पीड़ा हो रही थी, जब किसी तरह इस जाल को काटकर भाग जाने के लिए उसका मन व्याकुल हो रहा था, तब एक दिन हरानबाबू ने परेशबाबू से फिर अनुरोध किया कि विशेष रूप से ईश्वर का नाम लेकर सुचरिता के साथ उनका संबंध पक्का कर दिया जाय।

परेशबाबू ने कहा, "अभी तो विवाह में बहुत देर है, इतनी जल्दी बँध जाना क्या सही रहेगा?"

हरानबाबू बोले, "विवाह से कुछ समय पहले ऐसी बध्द अवस्था में रहना दोनों के मन की एकलयता के लिए मेरी समझ में विशेष आवश्यक है। पहले परिचय और विवाह के बीच एक ऐसा आध्यात्मिक संबंध, जिसमें सामाजिक दायित्व नहीं है फिर भी बंधन है-बहुत हितकारी होगा।"

परेशबाबू ने कहा, "अच्छा, सुचरिता से पूछ देखूँ।"

हरानबाबू ने कहा, "उन्होंने तो पहले ही सम्मति दे दी है।"

हरानबाबू के प्रति सुचरिता के मनोभाव के संबंध में परेशबाबू को अब भी संदेह था। उन्होंने इसीलिए स्वयं सुचरिता को बुलाकर हरानबाबू का प्रस्ताव उसके सम्मुख रखा। सुचरिता अपने दुविधा में पड़े हुए जीवन को कहीं भी अंतिम रूप से समर्पित कर सके तो उसे शांति मिले, इसलिए उसने अविलंब ऐसे निश्चित ढंग से हामी भर दी कि परेशबाबू का सब संदेह मिट गया। विवाह से इतना पहले बँध जाना ठीक है या नहीं, इस बात को अच्छी तरह सोच लेने के लिए सुचरिता से उन्होंने अनुरोध किया, फिर भी सुचरिता ने प्रस्ताव के बारे में कोई आपत्ति नहीं की।

ब्राउनलो साहब के निमंत्रण से निपटकर एक विशेष दिन निश्चित करके सभी को बुलाकर भावी दंपति का संबंध पक्का कर दिया जाय, यह तय हो गया।

सुचरिता को थोड़ी देर के लिए लगा जैसे उसका मन राह के ग्रास से मुक्त हो गया। उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि हरानबाबू से विवाह हो जाने पर ब्रह्म-समाज के काम में जुट जाने के लिए वह दृढ़ होकर अपने मन को तैयार करेगी। उसने प्रण किया कि प्रतिदिन वह थोड़ा-थोड़ा करके हरानबाबू से ही धर्म-तत्व संबंधी अंग्रेज़ी पुस्तकें पढ़ेगी और उनके निर्देश के अनुसार चलेगी। जो कठिन होगा, बल्कि जो अप्रिय होगा, उसी को ग्रहण करने की प्रतिज्ञा मन-ही-मन करके उसे एक संतोष का अनुभव हुआ।

हरानबाबू द्वारा सम्पादित अंग्रेज़ी पत्र कुछ दिनों से उसने नहीं पढ़ा था, आज प्रकाशित होते ही वह उसके पास पहुँच गया। शायद हरानबाबू ने विशेष रूप से उसके लिए भिजवा दिया था।

पत्र लिए कमरे में जाकर सुचरिता स्थिर चित्त होकर बैठ गई और परम कर्तव्य की तरह उसे पहली पंक्ति से पढ़ने लगी। मन में श्रध्दा लेकर,स्वयं को छात्र मानकर वह पत्रिका से आदेश ग्रहण करने लगी।

किंतु पाल के सहारे बहती हुई नाव हठात् पहाड़ से टकराकर टेढ़ी हो गई। पत्र के इस अंक में 'पुरानी पीढ़ी' नामका एक प्रबंध था, जिसमें ऐसे लोगों पर कटाक्ष किया गया था जो वर्तमान काल में रहते हुए भी प्राचीन काल की ओर मुँह किए रहते हैं। उनकी युक्तियाँ असंगत नहीं थीं बल्कि सुचरिता स्वयं ऐसी ही युक्तियाँ खोजती रही थी, किंतु प्रबंध पढ़ते ही वह जान गई कि वह गोरा को लक्ष्य करके लिखा गया है। हालाँकि उसमें गोरा का नाम या उसके लिखे हुए किसी प्रबंध का कोई ज़िक्र न था। सैनिक जैसे बंदूक की प्रत्येक गोली से एक-एक आदमी को मार गिरकार प्रसन्न होता है, इस प्रबंध के प्रत्येक वाक्य से वैसे ही किसी सजीव पदार्थ को बिध्द कर सकने का एक हिंसामय आनंद प्रकट हो रहा था।

वह प्रबंध सुचरिता से सहन नहीं हुआ। उसकी प्रत्येक युक्ति को काट फेंकने को वह छटपटा उठी। उसने मन-ही-मन सोचा- गौरमोहन बाबू चाहें तो इस प्रबंध को धूल धूसरित कर सकते हैं। गोरा का उज्ज्वल चेहरा उसकी ऑखो के आगे सजीव हो उठा और उसका प्रबल कंठ-स्वर सुचरिता के हृदय प्रदेश के भीतर तक गूँज गया। चेहरे और उस कंठ-स्वर की असाधारणता के आगे इस प्रबंध और इसके लेखक की क्षुद्रता उसे इतनी ओछी जान पड़ी कि पत्र को उसने फर्श पर फेंक दिया।

उस दिन बहुत दिनों के बाद अपने-आप सुचरिता विनय के पास आकर बैठी और बातों-बातों में बोली, "अच्छा, आपसे तो कहा था कि जिन पत्रों में आप लोगों के लेख छपे हैं, आप पढ़ने के लिए देंगे-अभी तक तो दिए नहीं?"

यह नहीं कह सका विनय कि इस बीच सुचरिता का बदला हुआ रुख देखकर उसे अपना वायदा पूरा करने का हौसला नहीं हुआ। उसने कहा, "मैंने वे सब इकट्ठे कर रखे हैं, कल ले आऊँगा।"

अगले दिन पुस्तिकाओं और पत्रों की पोटली लाकर विनय सुचरिता को दे गया। उन्हें पाकर सुचरिता ने फिर उन्हें पढ़ा नहीं, बक्स में बंद करके रख दिया-पढ़ने की बहुत अधिक इच्छा हुई थी इसीलिए नहीं पढ़ा। वह मन को किसी तरह भी भटकने नहीं देगी। उसने प्रतिज्ञापूर्वक विद्रोही चित्त को एक बार फिर हरानबाबू के शासन को सौंपकर राहत पाई।

रविवार की सुबह आनंदमई पान लगा रही थीं और शशिमुखी उनके पास बैठी सुपारी काटकर ढेर लगा रही थी। इसी समय कमरे में विनय के आते ही अपनी गोद की सुपारियाँ फेंककर हड़बड़ाती हुई शशिमुखी उठकर भाग गई। आनंदमई थोड़ा-सा मुस्करा दी।

बड़ी जल्दी विनय सबसे घुल-मिल जाता था। अब तक शशिमुखी से भी उसका काफी मेल-जोल था। दोनों ही एक-दूसरे को काफी छकाते भी रहते थे। विनय के जूते छिपाकर शशिमुखी विनय से कहानी सुनने की युक्ति किया करती थी। विनय ने शशिमुखी के ही जीवन की दो-एक साधारण घटनाएँ लेकर उन्हीं में खूब नमक-मिर्च लकाकर कुछ कहानियाँ गढ़ रखी थीं। इनके सुनाए जाने पर शशिमुखी बहुत चिढ़ती थी। पहले तो वह सुनाने वाले पर झूठ बोलने का आरोप लगाकर ज़ोर-शोर से प्रतिवाद करती, फिर हारकर भाग जाती थी। उसने भी बदले में विनय के जीवन-चरित्र को तोड़-मरोड़कर कहानी गढ़ने की कोशिश की थी, किंतु रचना-शक्ति विनय के बराबर न होने के कारण इसमें विशेष सफलता न पा सकी थी।

जो हो, विनय के पहुँचते ही शशिमुखी सब काम छोड़कर उसके साथ छेड़-छाड़ करने दौड़ी आती थी। इतना उत्पात करने पर कभी-कभी आनंदमई उसे डाँट देती थीं, किंतु कुसूर अकेली शशिमुखी का नहीं था, क्योंकि पहले विनय ही उसे इतना चिढ़ा देता था कि वह अपने को रोक न सकती थी। वही आज जब विनय को देखते ही हड़बड़ाकर कमरे से भाग गई तो आनंदमई को हँसी आ गई, किंतु यह हँसी सुख की नहीं थी।

इस छोटी-सी घटना से विनय को भी ऐसा धक्का पहुँचा कि वह कुछ देर तक गुमसुम बैठा रहा। उसके लिए शिशमुखी से विवाह करना कितना असंगत होगा, यह ऐसी छोटी-छोटी बातों से ही प्रत्यक्ष हो जाता था। विनय ने इसके लिए जब हामी भरी थी, तब केवल वह गोरा के साथ अपनी मित्रता की बात ही सोचता रहा था, स्वयं विवाह को उसने कल्पना के द्वारा मूर्त करके नहीं देखा था। इसके अलावा विनय ने इस बात पर गौरव करते हुए पत्रों में अनेक लेख भी लिखे थे कि हमारे देश में विवाह संस्कार मुख्यतया व्यक्तिगत संबंध नहीं बल्कि पारिवारिक संबंध है, उसने विवाह के संबंध में अपनी स्वयं की निजी इच्छा या अनिच्छा को कोई महत्व नहीं दिया था। आज जब शशिमुखी विनय को देखकर उसे अपना वर जान दाँतों से जीभ काटकर भाग गई, तब जैसे शशिमुखी के साथ अपने भावी संबंध का उसे एक साकार रूप दीख पड़ा। उसका समूचा अंत:करण पल-भर में ही विद्रोही हो उठा। गोरा उसे उसकी प्रकृति के विरुध्द कितनी दूर तक लिए जा रहा था, यह समझकर गोरा के ऊपर

गुस्सा हो आया और अपने प्रति धिक्कार का भाव पैदा हुआ। यह याद करके कि शुरू से ही आनंदमई ने इस विवाह का निषेध किया था, विनय का मन उनकी दूरदर्शिता के प्रति एक विस्मय-मिश्रित श्रध्दा से भर आया।

विनय के मन का भाव आनंदमई ने समझ लिया। उसे दूसरी ओर प्रवृत्ति करने के लिए उन्होंने कहा, "विनय, कल गोरा की चिट्ठी आई थी।"

विनय ने कुछ अनमने भाव से ही कहा, "क्या-क्या लिखा है?"

आनंदमई बोलीं, "अपनी तो कुछ ख़ास ख़बर नहीं दी। देश के छोटे लोगों की दुर्दशा देखकर दु:खी होकर लिखा है। घोषपाड़ा नाम के किसी गाँव में मजिस्ट्रेट ने क्या-क्या अन्याय किए हैं, उसी का वर्णन है।"

विनय ने गोरा के विरुध्द उत्तेजना के कारण ही अधीर होकर कहा, 'गोरा की नज़र बस उस दूसरी तरफ ही है। और हम लोग जो समाज की छती पर सवार होकर रोज़ न जाने कितने अन्याय करते हैं, उन सबकी लीपा-पोती करते हुए क्या यह कहते रहना होगा कि ऐसा सत्कर्म दूसरा कुछ हो ही नहीं सकता!"

सहसा गोरा पर ऐसे आरोप लगाकर विनय अपने को जैसे दूसरे पक्ष में खड़ा कर रहा हो, यह देखकर आनंदमई हँस दीं।

विनय ने कहा, "माँ, तुम हँस रही हो, सोच रही हो कि एकाएक विनय को इतना गुस्सा क्यों आ रहा है। क्यों गुस्सा आ रहा है, तुम्हें बताता हूँ। उस दिन सुधीर ने हाटी स्टेशन पर मुझे अपने एक मित्र के बागान में ले गया था। हम लोगों के सियालदह से चलते ही बारिश शुरू हो गई। सोदपुर स्टेशन पर गाड़ी रुकी तो देखा कि साहबी कपड़े पहने हुए एक बंगाली ने ठाठ से सिर पर छाता लगाए हुए अपनी बहू को गाड़ी से उतारा। बहू की गोद में छोटा बच्चा भी था, बदन की मोटी चादर से किसी प्रकार बच्चे को ढककर वह बेचारी खुले प्लेटफार्म पर एक ओर खड़ी ठंड और लज्जा से सिकुड़ती हुई भीगती रही, और पति महोदय सामान के पास छाता लगाए खड़े चिल्लाते रहे। मैंने पल-भर में ही समझ लिया कि सारे बंगाल में, चाहे धूप हो चाहे बारिश, चाहे भद्र घर की हो चाहे मामूली, किसी स्त्री के सिर पर छाता नहीं होता। जब देखा कि स्वामी तो निर्लज्ज भाव से सिर पर छाता ताने खड़े हैं और उनकी स्त्री अपने को चादर से ढकती हुई चुपचाप भीग रही है और मन-ही-मन भी इस दुर्व्यवहार से दु:खी नहीं है, और स्टेशन पर मौजूद लोगों में से किसी को भी इसमें कोई अनौचित्य नहीं दीखता तभी से मैंने निश्चय कर लिया है कि अब कभी मुँह से

कविताई की वे सब झूठी बातें नहीं निकालूँगा कि हम लोग स्त्रियों को बहुत अधिक सम्मान करते हैं, उन्हें लक्ष्मी और देवी मानते हैं।

देश को हम लोग मातृभूमि कहते हैं, लेकिन देश की इस मातृ-मूर्ति की महिमा यदि हम देश की स्त्रियों में ही प्रत्यक्ष न करें- अगर बुध्दि से,शक्ति से, उदार कर्तव्य-बोध से स्त्रियों को उनके सतेज, सरल, संपूर्ण रूप में न देखें, अपने घरों में केवल दुर्बलता, संकीर्णता और अधूरापन ही देखते रहें तो देश का रूप हमारे सम्मुख कभी उज्ज्वल नहीं हो सकता।"

सहसा अपने उत्साह पर झेंपकर विनय ने अपने सहज-स्वाभाविक स्वर में कहा, "माँ, तुम सोच रही हो, बीच-बीच में विनय ऐसी बड़ी-बड़ी बातें करता हुआ अक्सर लेक्चर झाड़ा करता है और आज भी उसको बुलास लगी है। मेरी बातें लेक्चर-जैसी आदत के कारण हो जाती हैं, लेकिन आज यह लेक्चर नहीं दे रहा हूँ। देश की लड़कियों का देश के लिए कितना महत्व है, पहले यह मैं अच्छी तरह नहीं समझता था, कभी सोचता भी नहीं था। माँ, और ज्यादा बकबक नहीं करूँगा, मैं ज्यादा बोलता हूँ इसीलिए मेरी बात को कोई मेरे मन की बात नहीं समझता। अब से थोड़ा बोला करूँगा।"

और अधिक देर विनय नहीं ठहरा, वैसा ही उत्साह-भरा मन लिए चला गया।

आनंदमई ने महिम को बुलाकर कहा, "बेटा, अपनी शशिमुखी का विवाह विनय के साथ नहीं होगा।" महिम, "क्यों, तुम्हारी राय नहीं है?"

आनंदमई, "यह संबंध अंत तक टिकेगा नहीं, इसलिए मेरी राय नहीं है, नहीं तो मेरी राय भला क्यों न होती।"

महिम, "गोरा राज़ी हो गया है, विनय भी राज़ी है, तब टिकेगा क्यों नहीं? यह ज़रूर है कि तुम्हारी राय न होगी तो विनय हरगिज शादी नहीं करेगा, यह मैं जानता हूँ।"

आनंदमई, "विनय को मैं तुमसे अधिक जानती हूँ।"

महिम, "गोरा से भी अधिक?"

आनंदमई, "हाँ, गोरा से भी अधिक जानती हूँ, इसलिए हर तरफ से सोचकर ही मेरी राय नहीं है।"

महिम, "अच्छा, गोरा वापस आ जाय.... ।"

आनंदमई, "महिम, मेरी बात सुनो। इसे लेकर यदि अधिक दबाव डालोगे तो आगे चलकर मुसीबत होगी। मैं नहीं चाहती कि इस मामले में गोरा विनय से कुछ कहे।"

"अच्छा देखा जाएगा", कहते हुए महिम ने एक और पान मुँह में दबाया और गुस्से से भरे हुए कमरे से चले गए।

गोरा - Gora in Hindi

1. गोरा अध्याय
2. गोरा अध्याय
3. गोरा अध्याय
4. गोरा अध्याय
5. गोरा अध्याय
6. गोरा अध्याय
7. गोरा अध्याय
8. गोरा अध्याय
9. गोरा अध्याय
10. गोरा अध्याय
11. गोरा अध्याय
12. गोरा अध्याय
13. गोरा अध्याय
14. गोरा अध्याय
15. गोरा अध्याय
16. गोरा अध्याय
17. गोरा अध्याय
18. गोरा अध्याय
19. गोरा अध्याय
20. गोरा अध्याय